गाँव शान्त हैं

किशन सिंह अटोरिया

कविता जीवन की पुनर्रचना है। कवि अपने समय का महज साक्षी ही नहीं होता वरन् बहुत स्निग्ध एवं आत्मीय रूप से उसका सहभागी भी होता है। इस सहकार की सघनता ही उसकी रचना को अद्वितीय बनाती है। कवि के सहज जीवनानुभव सृजन के विभिन्न सोपानों से गुजरते हुए उसकी रचना का निर्णय करते हैं। जीवन की बहुआयामी जटिलता के बावजूद श्री अटोरिया की कविताएँ जीवन के सहज एवं नैसर्गिक पक्ष को इतनी जीवन्तता एवं प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करती हैं कि किसानों, मजदूरों एवं श्रमिकों के साथ-साथ पूरे मानव जीवन की वर्तमान चेष्टाएँ, उनका रहन-सहन, उनकी गरीबी, उनका दुःख-दर्द, उनका हर्ष-विषाद सब कुछ इन कविताओं में सीधे उतर आया है और कहीं से भी संप्रेषणीयता का संकट उपस्थित नहीं होता।

ये कविताएँ भाषिक संरचना, शिल्प अथवा शब्द की आंतरिक बनावट के लिये कहीं से भी उद्वेलित नहीं दीखतीं। इनका कथ्य इतना गहरा एवं मजबूत है कि अनगढ़पन के बावजूद संवेदना के नितांत अप्रस्तुत धरातल पर इनके स्नेहिल स्पर्श को सहज ही महसूस किया जा सकता है। भाषा एवं शिल्प के प्रति अतिरिक्त आग्रह से मुक्त होकर मानवीय उष्मा एवं जिजीविषा के अनुसंधान की कोशिश ही इन कविताओं को समकालीन बनाती है।

प्रगतिशील एवं जनवादी कवियों की काव्य परम्परा का सुन्दर एवं संश्लिष्ट विकास इन कविताओं में सहज रूप से रेखांकित किया जा सकता है। जीवन के संवेगवान एवं जीवंत पक्षों को समग्र जीवन-दृष्टि के साथ भाषा एवं शिल्प के वलय में प्रस्तुत करना ही इन कविताओं की अपनी विशिष्टिता है और यही इस कवि की अपनी निजी पहचान भी।

गाँव शान्त हैं

किशन सिंह अटोरिया की कविताएँ

गाँव शान्त हैं

किशन सिंह अटोरिया

अनामिका प्रकाशन
185, नया बैरहना, इलाहाबाद-3

अनामिका प्रकाशन
185, नया बैरहना, इलाहाबाद-3
द्वारा प्रकाशित
●
संस्करण : 2001
●

●
लेजर कम्पोजिंग
प्रयागराज कम्प्यूटर्स
13, मोतीलाल नेहरू रोड
इलाहाबाद - 211 002
●
भार्गव प्रेस
बाई का बाग, इलाहाबाद
द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु० 125.00

जन साधारण के लिए

क्रम

गाँव शान्त हैं

जनसाधारण

जनसाधारण!
इस बीसवीं सदी में
अति व्यस्त हो
नोन तेल लकड़ी के चक्कर में
भूल कर सुध-बुध
परेशानियों से जूझ रहे हो।

मुझे सब मालूम है
मैं सब जानता हूँ
मैंने सब नजदीक से देखा है
चिन्ता मत करो
मैं भी तुममें से एक हूँ।

मैं कवि हूँ
जनता हूँ
जनता की बातें
जनता के लिये
जनता की भाषा में लिखूँगा
बिल्कुल यथार्थ
जनता के शब्दों में।

मैं तुम्हारे अनुभव
तुम्हारी अनुभूति
तुम्हारे दुःख-दर्द

सब अपने में समेट लूँगा।

मेरी कविता पढ़कर
समझ सकोगे
अपनी परेशानी का कारण
साथ ही उसका हल
उस पर विजय पाने की ताकत
और कविता भी
जनसाधारण की होगी।

●

परिचय

राष्ट्रीय एकता की गोष्ठी में आये
लोगों का परिचय हुआ
एक-एक कर
नम्बर वार।

पहला बोला-
मैं बंगाली हूँ,
दूसरा-
मैं गुजराती,
तीसरा बोला-
मैं तामिल हूँ,
चौथा बोला-
मैं राजस्थानी,
पाँचवाँ बोला-
मराठी हूँ,
छठवाँ बोला-
मैं असमी।

इस प्रकार परिचय चलता रहा
भारत चुपचाप क्षेत्र एवं भाषा में
बँटता रहा
और पूरी गोष्ठी में
धर्म-क्षेत्र और भाषा का
रंग जमता रहा।

अंततः परिचय समाप्त हो गया
लेकिन अपना परिचय
किसी ने नहीं दिया
एक भारतीय के रूप में।

क्या यही रूप है–
हमारी राष्ट्रीय एकता का?
नहीं!
हम भारतीय पहले हैं
बाद में हैं–
राजस्थानी, गुजराती
तमिल और बंगाली
यही है हमारा परिचय
हम हैं भारतीय।

भारती

मैं माँ हूँ
ममता, स्नेह एवं अपनत्व की प्रतिमूर्ति
ऋषि, गुरु, देवों की जन्मदात्री
और पालनहारी।
पुनीत संस्कारों में पोषित
वीर, दानी और सत्यवादी
पैदा किये हैं मैंने ही।
राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन ने पाया है
मुझसे अपरिमित बल
प्रताप, पद्मिनी को दिये हैं मैंने
ऊँचे आदर्श
पढ़ाकर स्वाभिमान का पाठ।

परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़ी हैं मेरे पुत्रों ने
ऊधम, आजाद, भगत ने बढ़ाया है मेरा मान
गाँधी ने बुलन्द की अहिंसा की आवाज।

उस समय मैं माँ थी
मेरी आवाज आशीष थी
लेकिन आज
समय स्वप्न की तरह निकल गया
लोग पाश्चात्य रंग में डूब गये
भारती और भारतीय संस्कृति को भूल गये।

जन-जीवन में रचे बसे
आदर्श और संस्कार
जो हमारी धरोहर थे
जिनके बल पर ऊँचा था
माँ भारती का मस्तक
विश्व में थी निज पहचान
भारती-पुत्र भूल गये
सब कुछ भूल गये।

आज मैं असहाय हूँ
अकिंचन हूँ, बेबस हूँ
सिसक रही हूँ
गलियों, चौराहों और मलिन बस्तियों में
भटक रही हूँ
दूर-दराज बसे गाँवों में।
भूल चुके हैं मुझे
ऊँची अट्टालिका वाले
दार्शनिक, प्रोफेसर, अफसर
नेता, अभिनेता
छात्र, विज्ञानवेत्ता
हीन-भावना से ग्रसित होकर।

मेरी ममता
मेरी वाणी
उपेक्षित है
अंग्रेजी की चकाचौंध के सामने।
कौन है दर्द सुनने वाला आज
फटेहाल लोगों का,
टाट-पट्टी के स्कूलों का,
गरीबों के जन-जीवन का।

मैं ढूँढ़ रही हूँ अपना आधार
बड़े-बड़े शहरों में
अफसरों के घरों में
लोगों के भाषण में
मोटी-मोटी पत्रावलियों में
असहाय होकर।

आर्य पुत्र!
क्या भूल गये
विदेशी युवती और उसके पुत्रों की करतूतों को
जिन्होंने जुल्म ढाये
ढाई सदी तक
सोने की चिड़िया को
माटी की चिड़िया बना दिया।

तुम अत्याचार की भाषा
शोषण की वाणी
गुलामी की जंजीर को
कहाँ तक ढोओगे
कितनी पीढ़ियों को कलंकित करोगे
इस दुःस्वप्न से।

तोड़ दो इस जंजीर को
त्याग दो इन अनजान संस्कारों को
जिसने अलग कर दिया
भाई से भाई को।

अन्यथा पाश्चात्य की
अंधी होड़ में
हम खो जायेंगे ब्रह्माण्ड में कहीं
नामोनिशान न होगा

भारतीयता का
न भारतीय संस्कृति का।

रह जायेगा बस
इण्डिया और वेस्टर्न कल्चर
और सिसकती रह जायेगी
माँ भारती
दम तोड़ने के लिए
अपनी जन्मभूमि में
अकेली।

अछूत

सदियों से
उपेक्षित, शोषित, दलित
ऋषि, मुनि, गुरुओं की पावन धरा पर
ये अछूत।

मानव का मानव के साथ रिश्ता
छूत-अछूत का नहीं
भाई-भाई का है
प्यार प्रेम का है,
जिससे उत्पन्न होती है भावना
वसुधैव कुटुम्बकम् की।

सबके शरीर में
बहने वाले खून का रंग एक
विधाता एक
पंचतत्व से निर्मित
सबकी काया एक
फिर भेद कैसा
छूत-अछूत का।

क्षुद्र स्वार्थवश
किया है मानव ने मानव में भेद
भाई को भाई से अलग करने का षड्यन्त्र
छुआछूत की

लक्ष्मण-रेखा खींच कर।

अब बदलते समय के साथ ही
समझना होगा अछूत का वास्तविक अर्थ
और अछूत माने जाने वाले
लोगों के दिलों का दर्द।

अछूत!
वह है जो-
पापात्मा है
आर्थिक अपराधी है
असामाजिक तत्व है
देशद्रोही है।

खून-पसीना बहाकर
रोजी-रोटी पैदा करने वाले
अभावों के हमराही
अछूत नहीं हैं।
अछूत हैं-
भ्रष्टाचार का दामन पकड़
गरीबों की चिता पर
अपना महल खड़ा करने वाले।

हमें छूत-अछूत का भेद
समाप्त करना ही होगा
मानव का मानवता के साथ
रिश्ता कायम करना ही होगा
मानव कल्याण का ध्येय
पूरा करना ही होगा।

खेत

यह खेत है
सभी कुछ उगता है इसमें
सबको बराबर प्यार करता है खेत
भेद-भाव नहीं करता
तटस्थ रहता है खेत।

खेत किसी राजनीति में नहीं पड़ता।
जो जैसा बोता है
वैसा काट लेता है,
अच्छा परीक्षक है खेत।
लेकिन इतना भोला भी नहीं,
खेत भी चाहता है-
दिन-रात की सेवा
देशी-विदेशी व्यंजन
नये-नये मनोरंजन
और ढेर सारा मिनरल वाटर
ताकत पाने के लिए।

अब
खेत आधुनिक हो गया है
और पेटू भी,
किन्तु
कृतघ्न नहीं है खेत,
सेवा करने वाले का

भर देता है कोठार
ढेर सारे अनाज से
फल और सब्जियों से।

घर-घर में
लक्ष्मी का वास कर देता है खेत।

जीने के लिए

कौआ बोला
काँव-काँव
सीधी सादी
चहकती चिड़ियों के बीच।

अचानक थम गई
चें-चें की सुरीली आवाज
कौआ के डर से,
कहीं कौआ
गुस्से में आकर
मरोड़ न दे किसी
चिड़िया की नरम गर्दन,
खलल न डाल दे
उनकी शान्ति की दुनिया में।

चिड़ियों की चीं-चीं रुकने पर भी
नहीं रुकी
कौआ की निर्मम आवाज,
और कौआ की चोंच
जिसको लग गया है स्वाद मांस का
नोंच-नोंच कर
डरा-डरा कर
एक-एक चिड़िया
निगलने लगी।

चिड़ियाँ साहस न कर सकीं
एकजुट होकर
मुकाबला करने के लिए
और कौआ की काँव-काँव
बढ़ती गई निरन्तर।

काँव-काँव बन्द करने के लिए
जीने के लिए, जरूरी है-
चिड़ियाँ हिल-मिल कर रहें
दाना चुगें एक साथ
और डट कर मुकाबला करें
काँव-काँव का।

इस दुविधा में

फूस का छप्पर
टँगा है चार डण्डों पर
यही है गरीब फेंकू का घर।

बरसात की झड़ी ने
छेद दिया है जगह-जगह
गिरने लगी हैं बूँदें
छप्पर का हृदय चीरकर
टप...टप....टप।

बज रहा बरसाती बाजा
मच्छर, झींगुर और मेंढक
तान लगाकर
मिला रहे हैं सुर
झिन....झिन....झि...न..स-न-न।

टपकते पानी से
सराबोर हो गये हैं
फटे-पुराने कपड़े
बाजरे का आटा और
सरसों की सूखी लकड़ियाँ।
पास में पड़े
बिछौने के चिथड़े से
आ रही है पेशाब की खराँद

नाक को छेदती
करंट की तरह।

फेंकू का छः बच्चों का परिवार
बूँदों से बचने को
बैठा है सिकुड़ कर
एक कोने में।
कुछ ऊँघ रहे हैं
कुछ कुलबुला रहे हैं
कुछ ठिनक पड़ते हैं कभी-कभी
अधसने कीचड़ में।

फेंकू का परिवार
गिन रहा है
एक-एक पल
राम नाम लेकर
आधी रात को
इस दुविधा में।

राज

सफेद धोती-कुर्त्ता पहने
मूछों पर ताव दिये
हाथ में बेंत लिये
आ रहा एक आदमी
लिए खुशी चेहरे पर
हरिज़न टोले में।

आते ही बोला
ओ मैकू!
ओ चमरू!
सुना तुमने
अब आ गया पंचायती राज
सीधा पैसा आयेगा गाँव सभा में।

हम तय करेंगे
पैसा खर्च करने की विधि
गाँव में ही बनेगी योजना
होगा अब विकास गाँव का।

तुम पंच बनोगे
बराबरी में बैठोगे
सबको मिलेगा अब
गाँव में ही रोजगार।

मैकू और चमरू
न कुछ समझे
न कुछ बोले
बस देखते रहे
मालिक के मुँह की तरफ
कुछ याद करने को,
कौन-सी पंचायत है इस गाँव में
आज अचानक मालिक खुश क्यों हैं?

लेकिन क्षण भर बाद ही
सोच कर-
कहीं मालिक नाराज न हो जावें
बिना समझे ही
खोल दिये उसने
मुस्कराने के लिए
पपड़ी भरे सूखे होंठ।

पाठशाला

खण्डहर-सा एक कमरा
बहुत पुराना
जिसकी छत टिकी है
दो बल्लियों के सहारे
उसी में है प्राथमिक पाठशाला
गाँव के बच्चों की कर्मशाला।

सामने एक पीपल का पेड़
अधनंगा-सा
खड़ा है चुपचाप
वैराग्य भाव से।
उसके आस-पास
ऊँची-नीची जमीन पर
पिछी है फटी चिथड़ी-सी
टाट की चटाई।

अधनंगे
मैले-कुचैले कपड़े पहने
गाँव के बच्चे
लिटपिटा-सा बस्ता लेकर
चले आ रहे हैं धीरे-धीरे
पैर घसीटते
पाठशाला की ओर
पढ़कर इंसान बनने।

पाठशाला में कुछ भी नहीं है
खंडहर-से कमरे में
पड़ी हैं कुछ टूटी-लँगड़ी कुर्सियाँ
फूटी हुई बाल्टियाँ
टाट-पट्टी के फटे-पुराने चिथड़े
सफेद चाक के कुछ टुकड़े।
मास्टर जी की तीन टाँग की कुर्सी
टिकी है ईंटों के सहारे
दीमक चट कर गई है
श्यामपट्ट को जगह-जगह से।

लेकिन फिर भी
सर्दी में ठिठुरते
गर्मी में तपते
बरसात में भीगते
पढ़ते हैं बच्चे वर्षों से
रोज आकर इसी पाठशाला में।

बच्चे मानते हैं मास्टर जी को
भगवान की तरह
और मास्टर जी के दर्शन होते ही
बच्चे बोल उठते हैं
खुश होकर
रटे-रटाये शब्द
ऊँची आवाज में
छोटा अ, बड़ा आ।
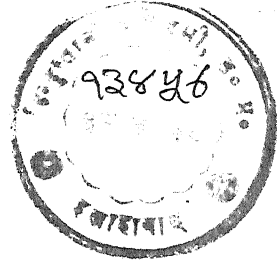
क्रान्ति ! तू धीरे-से आना

क्रान्ति !
तू धीरे-से आना
हो-हल्ला
बिल्कुल अपने साथ न लाना।

बेकारी, गरीबी का हो नाश
धन-वैभव हो आस-पास
हिंसा, आतंक को मार भगाना
बम-तोपों को तुरन्त मिटाना
शान्ति लाना
क्रान्ति ! तू धीरे-से आना।

सुख-वैभव का हो भण्डार
जन-जन को मिले आधार
छुआछूत का दाग मिटाना
ऊँच-नीच का भाव भगाना
उन्नति लाना
क्रान्ति ! तू धीरे-से आना।

भूखों को रोटी मिल जाये
गूँगों को आवाज,
मजदूर की आस बन आना
विधवा की आह ले जाना
मानवता लाना
क्रान्ति ! तू धीरे-से आना।

उत्सर्ग-त्याग का हो अभिषेक
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख हों सब एक
आपस में सद्‌भाव बढ़ाना
कर्म की मशाल जलाना
आदर लाना
क्रान्ति! तू धीरे-से आना।

किसान की खेती फले
नारी को सम्मान मिले
दुखियों के दर्द ले जाना
सबको धीरज बँधा जाना
शक्ति लाना
क्रान्ति! तू धीरे-से आना।

भारत को गाँधी ले आना
भारत-माँ को सम्मान दिलाना
राम-राज्य साकार बनाना
ऐसे ढंग से तू आना
जरूर आना
क्रान्ति! तू धीरे-से आना।

मैं वही लिखता हूँ

पीड़ा के क्षण
आह के कण
मैं जो देखता हूँ
अनुभव करता हूँ
पाता हूँ समाज से
आस-पास के वातावरण से
वही लिखता हूँ।

अभाव, शोषण
और दुःख-दर्द में
खोजता रहता हूँ
अपनी कलम के शब्द
सबके दुःख-दर्द को
अपना दुःख समझता हूँ

देखकर
तुम्हारा दुःख-दर्द
रोता है मेरा हृदय दिन-रात
और सोचता है
दुःख दूर करने के उपाय।

मेरी कलम भी
बहाती रहती है
नीले, काले और लाल आँसू
मेरे साथ ही

और बटोर रही है
तुम्हारे दुःख-दर्द
रोज चुन-चुन कर।

विश्व के दुःखी मानवो!
परेशान न हो
न हो भयभीत
मैं तुम्हारे साथ हूँ
मेरी कलम निकालेगी
तुम्हारे दुःख-दर्द के काँटे
आहिस्ता-आहिस्ता।

मैं तुम्हारी यह अपरिमित पीड़ा
रखूँगा दुनिया के सामने
जिसको देख-सुन और पढ़कर
अनुभव कर सकेंगे तुम्हारी पीड़ा
दुनिया के लोग।

और आखिरकार
उगेगी सूरज की कोई किरन चुपचाप
फैलेगा प्रकाश,
की जवाई और-
तुम्हारे दुःख-दर्द
सब मिट जायेंगे
एक दिन।

गँवई बच्चे

पोखर के गंदले
मटमैले उथले पानी में
कूद-कूद कर
नहा रहे हैं
नंग-धड़ंग काले कलूटे
गँवई बच्चे!

किलकारी भरते
बात-बात पर हँसते
छप-छप करते
गाना गाते
कभी तैरते, कभी भागते
कभी नाचते
ये गाँव के छोटे बच्चे
अच्छे बच्चे! दिल के सच्चे!

भारत माँ के गँवई पूत
सुख-सुविधाओं से कोसों दूर
फिर भी सुख से चूर
क्या होगा
इनका भविष्य
क्या ये प्रतियोगिता में टिक पायेंगे
इक्कीसवीं सदी में जा पायेंगे।

हाँ जायेंगे
जरूर जायेंगे
लेकिन बनकर
मिल मजदूर
दफ्तर के बाबू, चपरासी
या भूमिहीन किसान
और लेकर
पिचके कपोल
धँसी आँखें
खाँसता-थूकता शरीर।

यह किलकारी
यह मुखमुद्रा
मिट जायेगी चुपचाप
रोजी-रोटी के चक्कर में।

मेम का कुत्ता

वह छोटा-सा नन्हा
विलायती कुत्ता
मेम सॉब का!
भौतिक सुख उसको भाता
दूध-मलाई पीता
गोश्त खाता
जी रहा विलायती जीवन
खुश होता मन ही मन
पूँछ हिलाता
कूँ-कूँ करता
कभी दौड़ता
कभी सूँघता
जगह-जगह पर टट्टी करता
बँगले में दुर्गन्ध फैलाता।

रोज-रोज यही हाल
करता मेम का लाल
मेम सॉब का कुत्ता प्यारा
घूम-घूम थक हारा
चूमने लगा पास बैठी मेम का चेहरा
जाग उठी मेम की ममता
उठा गोदी में
उसको बार-बार दुलारा
मखमली बिस्तर पर उढ़ा कम्बल

सुलाने लगी ममता से भरकर
कभी चूमती
कभी सहलाती
बात-बात पर गाना गाती
वह ममता की प्रतिमूर्ति।

बाहर बरामदे में
फटे टाटों को ओढ़े, खुले गगन में
नौकर थर-थर काँप रहा था
अपने पतले पैरों को
छोटे पेट में घुसा रहा था
वह भूखा प्यासा थका-हारा
कड़कती ठण्ड में
बजते दाँतों को रोक रहा था
और बार-बार
हो परेशान
धरती माँ से चिपट रहा था।

यह क्यों हो रहा मानव के साथ
क्यों हो रहा मानवता पर घात
कुत्ता श्रेष्ठ है या मानव
मानव के लिये सोच मानव
कुत्ता-बिल्ली छोड़
मानव को गले लगा।
सिसकती मानवता को
धीरज बँधा
इससे
मानव-मानव में प्यार बढ़ेगा
मानवता का वृक्ष फलेगा।

तिक, तिक आ.....

क्वार की मन्द बयार
ठण्डक लिये अपने में
बह रही खेतों की मेंड़-मेंड़
छिटक रही
पूर्णिमा की चाँदनी
खुले-अधखुले खेतों में
आ रही आवाज
चीरती नीरवता को
तिक तिक तिक
आ....अ....आ।

चल रहा हल धीरे-धीरे
चले जा रहे बैल सीरे-सीरे
खूँदता जा रहा किसान
चुपचाप जुते खेत
कभी-कभी अनायास
निकल जाता स्वर
तिक तिक तिक
आ....अ.....आ।

दे रहा किसान
कर्म का सन्देश महान्
पथ पर डटे रहो
ठण्ड तपन सहते रहो।

आज्ञा शिरोधार्य कर
मन्त्र कर्म का सुन कर
खींच रहे बैल-
हल को मन लगाकर
कभी-कभी किसान
देखता है सिर उठाकर
नीला अम्बर
टिमटिमाते तारे चमकता चाँद
और जुता खेत।

फिर अनुमान लगाता
कितनी है रात्रि शेष
कितना है शेष खेत
जोतना है जिसको सुबह तक।

फिर शुरू होगा
दूसरा खेत
फिर वही क्रम
रात-दिन खेत जोतना
खेत बोना
पसीना बहाकर
मोटा-झोटा पहनना
रूखा-सूखा खाना
यही है
किसान का जीना।

खिचड़ी

हर जगह
खिचड़ी पक रही है
रंग-बिरंगे दानों की
नयी-नयी
बिल्कुल अनजान
आधुनिकता के नाम पर
पूरे देश में।

लेकिन होशियार!
यह अति स्वादिष्ट
मोहक और आकर्षक
चन्द लोगों की प्यारी खिचड़ी
पच नहीं पायेगी
चल नहीं पायेगी
राम, कृष्ण और गाँधी के
देशी समाज में!

मुझे विश्वास है
मेरे देश में
एक दिन फूटेगी आवाज
अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति,
और लोग
अपनी भाषा
अपनी वेशभूषा

अपना खान-पान
अपनायेंगे प्यार से।

आधुनिकता से ऊबकर
खिचड़ी का स्वाद
तर-बतर हो जायेगा
और
देशी दलिया का
राज होगा।

फुटपाथ पर

महलनुमा बँगले के सामने
फुटपाथ पर
चिथड़ों में लिपटी
अकड़ी-अकड़ी
सूखी-सूखी
तवे-सी काली
अधनंगी
पड़ी है मुँह फाड़े
एक बालिका।

चिथड़ों के आस-पास
मक्खियाँ भिनभिना रही हैं
वह खाज से
परेशान होकर
खुजला रही है
कभी हाथ
कभी पैर
और कभी सिर के बाल।

बार-बार खुजलाने से
जगह-जगह
छोटे-छोटे घाव
उभर आये हैं
उसके शरीर पर

और घावों में
खून चिमचिमा रहा है।

वह धरती पर कब आई
किस माँ ने जाई
रेखाएँ नहीं खिंचतीं
उसकी आँखों में
हजार कोशिश करने पर भी।

इसी फुटपाथ की गोद में
चिथड़ों में लिपटकर
गन्दी नाली की बदबू में साँस लेकर
जूठी पत्तलें चाटकर
भीख माँग कर
सिलवर के कटोरे का सहारा लेकर
निकाले हैं दस वर्ष।

कड़कती ठण्ड
मूसलाधार बरसात
लू के थपेड़े
सब कुछ सहे हैं उसने
बेबसी में।

क्या-क्या सहा है उसने
और किस आशा में
नहीं जानती वह भी,
क्योंकि दर्द के गम में
उसका दिल भी
हो गया है फुटपाथ।

कुत्तों के साथ घूमते लोग
कार में दौड़ते साब
निकल जाते हैं हर रोज
उसके पास से ही
सब कुछ देखकर भी
अनदेखा किये।

नहीं मिल पाये हैं उसे अब तक
सहानुभूति के दो शब्द
चहकते महकते
लोगों के मुँह से।

लेकिन कब तक
आखिर कब तक
रेंगती रहेगी उसकी जिन्दगी
इस खुले फुटपाथ के सहारे
और कब तक बचायेगी यह
जवान होती बालिका
अपने कंकाल से शरीर को
समाज के भेड़ियों से।

क्या आयेगा कोई दिन
अचानक उग कर
होगी जब इसकी तपस्या सफल
पसीजेगा किसी सबला नारी का हृदय
नई जिन्दगी देने के लिए।

अन्यथा किसी दिन
सांसारिक झंझावात से हारकर
टूट-टूट-कर
बिखर जायेंगी
इसकी हल्की-फुल्की हड्डियाँ
इसी फुटपाथ पर।

अमरबेल

हरा-भरा पादप
हरित वन प्रान्त में
झूम रहा अपनी मस्ती में
मन्द बयार के झोंकों से
उषा की मोहक लालिमा में।
धीमी-धीमी बूँदा-बाँदी में।

झूम रहा था उसका डण्ठल
तना, पत्ती और कोंपल
पुलकित मन था उसका हर पल
अमन-चैन था मस्त चमन में
बढ़ा, खड़ा था खुले गगन में।

तीव्र पवन का झोंका आया
धूल, मूल, कंकड़, टकराया
सीधा-सच्चा पादप घबराया
हिलने लगा आँधी-अंधड़ में
गूँज गया शोर चहुँ ओर।

छोटा तिनका अमरबेल का
जूझ रहा था झंझावात से
निराधार था वह लाचार
व्यथित हो वह फटेहाल
खोज रहा था अपना आश्रय

ठोकर खाता वन-मग में।

सिसक रहा था पकड़ तना को
वह छोटा तिनका अमर बेल का
छूट गयी चाह जीने की
किंकर्तव्यविमूढ़ वह बेसहारा।

देख लिया पादप ने उसको
मुदित हुआ पाकर तिनके को
मुदित वह प्रसन्नचित्त
भरपूर दिया उसको वित्त
घर-आंगन में दिया बसेरा।

शरणागत की आवभगत की
अतिथि का किया सत्कार
भूख-प्यास में रहा परिवार
उसको दिया भरपूर आहार।

चिलचिलाती धूप
कड़कती ठण्ड
विद्युत् की चकाचौंध
मेघों का गर्जन-तर्जन
सहता रह। प्रफुल्लित मन
नि:स्वार्थ भाव
मय परोपकार
लेता रहा सेवा का भार
चिर सिंचित सार तत्त्व
किया अमरबेल को अर्पण।

पाकर छूट भले पादप से
लगा थिरकने तिनका मन में

खाया-पीया खूब मजे में
सोया नींद खुले गगन में
बढ़ता रहा वह दिन-रात
भूल गया अपने जजबात
याद न रहा अतिथि सत्कार
भूल गया पादप का प्यार।

मद में मस्त
वह निष्ठुर अमरबेल
फूलने-फलने की कुटिल चाह
याद न आई पादप की आह
करने लगा पादप का शोषण।

पादप बेचारा भोला-भाला
सहता रहा निज तन शोषण
शेष रह गया अस्थि पंजर
जाती रही रंगो-आब
सूख गये हरित पात
रह गया पादप मात्र ठूँठ
बता रहा उत्सर्ग की कहानी
आवभगत में गई जवानी।

अमर बेल!
है तू निष्ठुर
किया तूने विश्वासघात
जिसने दिया सहारा तुझको
बज्र मारा तूने उसको।

ओ गद्दार!
ओ परजीवी!
भूल गया तू सत् आदर्श

चूस लिया तूने पादप को
अतिथि बन तू बना कसाई
माफ न करेगा तुझे गुसाईं
महल बनाया तूने अपना
पूरा कर लिया अपना सपना
डाल-डाल पर छाकर
तू बहुत इतराया

अमरबेल सुन!
तू अमर नहीं है
क्यों भ्रम अपने में पाल रहा है
निराधार तू है परजीवी
यह भी क्या तू भूल रहा है
बस कर बहुत हो चुका
बन्द कर दे यह शोषण
मान ले अहसान
शरणदाता से क्षमा माँग ले
बाँट ले सुख-दु:ख आधा-आधा
अपना तू अस्तित्व बचा ले।

तेरा रहा यदि यही क्रम
पाल लिया यदि कोई भ्रम
पाप का घट भर जायेगा
तुझ पर मातम छा जायेगा
जिस दिन पादप चुक जायेगा
तेरा अचानक काल आयेगा।

पता नहीं बेटा

ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ
और बंगलों को देख
शहर में आये
मजदूर के बेटे ने
एक मकान की ओर इशारा कर
अपने बाप से पूछा–
दद्दू! कितने कमाते हैं इस घर में?

बाप बोला–
पता नहीं बेटा!

ये क्या करते हैं?
कहाँ से आये हैं?
कैसे बनाया इतना अच्छा मकान?
पता नहीं बेटा!

हमारा मकान क्यों नहीं बना?
पता नहीं बेटा!

कब बनेगा?
दद्दू झल्लाया
गुस्से में आँखें निकालकर बोला–
पता नहीं....बेटा!

और चुप हो
सोचने लगा मजदूर का बेटा–
करता है कमरतोड़ मेहनत
दिन–रात
पूरा परिवार,
फिर भी शाम को
नहीं मिलता भर–पेट खाना
फिर कैसे बने होंगे ये
ऊँचे–ऊँचे बँगले
मेहनत कर
पसीना बहाकर?

गुड़

झोंपड़ी के एक किनारे
बिछी टूटी खाट पर बैठा
देहाती लड़का
अपने को धन्य समझकर
प्यार से
मिठास लेकर
चबा-चबाकर
रोटी-गुड़ खा रहा है।

अचानक कुछ सोचकर
पास बैठी माँ से बोला-
मइया! गुड़ बीत गया है
ठण्डक ज्यादा है
कल पाँच किलो गुड़ ले आना।

मइया! एक बात पूछूँ
साहूकार के कोठार में तो
भरा होगा
बहुत सारा गुड़
दिन-रात
जब मन चाहे
आराम से खाता होगा
काफी मोटा हो गया होगा।

माँ दीनता से बोली–
हाँ बेटा!
साहूकार के घर क्या कमी है
उसके क़ोठार में तो
नीचे से ऊपर तक
गुड़ ही गुड़ भरा है
इसीलिए
कंगाली से रूठी लक्ष्मी
साहूकार के घर बसती है
रोज गुड़ खाने के लिए।

बरगद विशाल

बरगद गाँव में
खड़ा है सीना ताने
युगों-युगों का
पूरा इतिहास लिए
सहकर तपती दुपहरी
कड़कती ठण्ड
मूसलाधार वर्षा
और असंख्य कुल्हाड़ी की चोटें।

बरगद फैला है
पूर्व से पश्चिम तक
उत्तर से दक्षिण तक
समेट कर प्राचीन संस्कृति के अवशेष
शाखाएँ छाई हैं दूर-दूर तक
जड़ें लम्बी-लम्बी
शाखाओं से उगकर
गड़ गई हैं धरती में
मजबूती देने के लिए।

विशाल है बरगद
शक्ति का प्रतीक है बरगद
एकता का सार है बरगद
जंगल का सिरताज है बरगद।

भ्रमवश कुछ लोग कहते हैं
बूढ़ा हो चला है बरगद
कमजोर हो रहा है बरगद
जड़ें टूटेंगी
शाखाएँ बिखरेंगी
खण्ड-खण्ड होगा बरगद।

लेकिन यह सोचना मूर्खता है
बरगद बरगद है
सदियों का इतिहास है बरगद का
सतपुरुषों ने लिया है बसेरा
बरगद की छाँव में
बरगद की जड़ें पाताल चूमती हैं
शाखाएँ आकाश
छुईमुई नहीं है बरगद
पहाड़-सा अटल है बरगद।

बीतेगा समय ज्यों-ज्यों
और मजबूत होगा बरगद
और फूटेंगी बरगद की जड़ें
और फैलेंगी बरगद की शाखें
आँधी और तूफान
टकराकर मिट जायेंगे
बरगद की दृढ़ता से।

दस रुपये में

गरीबी शासक है
फैला है दूर-दूर तक
इसका साम्राज्य एकछत्र
पूरे देश के कोने-कोने में।

गरीबी मिटाने की
होती हैं चर्चाएँ
वातानुकूलित भवनों में
बड़े-बड़े सेनापति
युद्ध-कौशल में निपुण
सुबह से शाम तक
खोजते हैं हल
गरीबी मिटाने का।
किताबी ज्ञान के आधार पर।

अपनी बुद्धिमत्ता दिखाने
गरीबों का हमदर्द बनने
करते हैं फिजूल के तर्क-वितर्क,
पेश करते हैं उधार लिए हुए
बड़े-बड़े फण्ड
और आँकड़ों का जंजाल
उधार की भाषा में।

क्या जानते हैं ये
गरीबी क्या है
कहाँ-कहाँ फैली है गरीबी
फौज कितनी है
कैसे टूटेगा चक्रव्यूह
कैसे ढहेगा साम्राज्य
इस गरीबी का?

यदि देखना है और
समझना है गरीबी को नजदीक से,
तो पूछो
भूख से तड़पते बच्चों से
सड़क पर इकट्ठे मजदूरों से
जिस्म बेचती नारी से
जूठन खाते भिखारी से।

और नहीं तो
कुछ दिन करो मजदूरी
दस रुपये में पूरे दिन
वह भी कभी-कभी मिलेगी
ढूँढ़ने पर
मिन्नत माँगने पर।

फिर दस रुपये में
भरो अपने छः बच्चों का पेट
लत्ते-कपड़े भी खरीदो
दवाई भी ले लो
शादी-ब्याह
और न जाने कितने
रीति-रिवाजों को भी
निबाहो हँस-हँस कर

दस रुपये की मजदूरी में।

तब पता चलेगा
गरीबी की मार का
तोंद चार दिन में पिचक जायेगी
यह चमकीला चेहरा
एक माह में सफेद पड़ जायेगा
धक्के खाकर।

यदि मिटाना है गरीबी को
तो गरीबी का चक्रव्यूह भेदना होगा
जन-जन को जंग छेड़ना होगा
आहत को गले लगाना होगा।

इतिहास

इतिहास
तुम पेटू हो
और साथ ही निर्दयी भी।
निगल जाते हो तुम रोज
दिन और रात
डकार भी नहीं लेते हो।
कब तक चलेगा
तुम्हारा यह सिलसिला।

अरे !
कम से कम
इतनी तो दया रखो,
अच्छे लोग
अच्छी बातें और अच्छे दिन
लौटा तो दिया करो
कभी-कभी,
जिन्हें देख मैं धैर्य रख सकूँगा।

वर्तमान की बातें सुन
इतिहास तपाक से बोला-
सुनो वर्तमान!
तुम अन्धे हो
हर चीज का भण्डार है मेरे पास
जो चीज आज तुम्हारी है

वे सब कल मेरी होंगी
सीखना चाहिये
तुम्हें हर चीज
मेरे पन्ने उलटकर।

मुझे देखो
कितना धैर्यवान हूँ मैं
समय के अधीन हूँ
सहन करना पड़ता है
भला-बुरा
हिंसा-उत्पात
सब कुछ
मेरे हृदय को।

देखो मेरा स्वरूप
फिर सत् प्रसंग और चिर सन्देश
चुन-चुन कर
मुझे नया रूप दो
अपने रूप में तरास कर।

मैं तुम्हें आह्वान दूँगा
नये युग के निर्माण का
सुख और शान्ति का
जिससे
फूलेगी-फलेगी मानवता निष्कंटक
और फैल जायेगी विश्व-बन्धुत्वता
धरती के कण-कण में।

लो और लौटा दो

लो, ले लो
मैं बेच रहा हूँ
अपनी मर्जी से
बनावटी चीजें-
पैन्ट-शर्ट
सूट-टाई
और पाश्चात्य संस्कृति
यह सब तुम्हीं को मुबारक हो।

थक गया हूँ मैं
भार ढोते-ढोते
देख लिया है मैंने
अन्दर तक जाकर
इनका खोखलापन।

फिर भी इन्हें
निःशुल्क नहीं दूँगा तुमको
जानते हो
मेरे पुरखों ने
इसकी चकाचौंध में आकर
त्याग दिये
अपने खान-पान
वेश-भूषा
और आचार-विचार

बिना सोचे समझे
केवल अन्धी होड़ में शामिल होकर।

मुझे
न डालर चाहिये
न पौण्ड,
मुझे चाहिये
अपनी जवान
वही भावना
जिससे आजादी पाई,
वही वस्त्र
बिल्कुल वैसे ही
जैसे राणा प्रताप ने पहने
गाँधी जी ने ओढ़े,
और मुझे लौटा दो
मेरे देश की संस्कृति।

सुरती

पहाड़ी खदान में
पत्थर तोड़ते
अचानक बचऊ को
सरप लगी सुरती की।

बचऊ ने देखा
मूँछधारी हट्टे-कट्टे ठेकेदार को
और हथौड़ा चलाता हाथ रोककर
चुपके से निकाल ली कमर में बँधी
खैनी की डिब्बी
फिर पास ही पत्थर तोड़ते मटकू से
माँगा थोड़ा-सा चूना
तम्बाकू में मिलाने के लिए।

बचऊ ने
बायें हाथ की हथेली पर निकाली
दाँयें हाथ से दो चुटकी तम्बाकू
और मिलाया थोड़ा-सा चूना
फिर रगड़ने लगा
तेजी लाने को
दायें हाथ के अँगूठे से।

बीच-बीच में
मार देता थप्पी दायें हाथ की

फिर हिलाता हथेली को
उसकी गर्द को निकालने।

तम्बाकू को दायें हाथ में रीता कर
पोंछ देता बायाँ हाथ
कमर में पहनी धोती से
फिर बायें हाथ पर रख
अँगूठे से रगड़ कर मिक्सचर
थप्पी लगाता बार-बार

सुरती को कर तैयार
बचऊ ने फैलाया हाथ
पास ही पत्थर तोड़ते
मटकू छनकू की तरफ

मटकू छनकू ने
चलते हाथ रोक
भर ली चुटकी
छाले भरे हाथ से
और दूसरे हाथ से
होंठ पकड़
रख दी सुरती
होंठ और दाँतों के बीच

सुरती अब उनको
देगी चुस्ती-फुर्ती
काफी देर तक
उसी के नशे में
मस्त होकर

उठायेंगे भारी हथौड़ा
भारी-भरकम पत्थर तोड़ने को
भूलकर सारी थकान।

और दो घंटे बाद
फिर शुरू होगा
यही सिलसिला
सुरती बनाने का
लेकिन इसके बाद सुरती
बचऊ नहीं
कोई और बनायेगा।

नचकऊ

दिन-भर कल
तपती दुपहरी में
पसीना झोंककर
नचकऊ ने कमाया था
बाजरे का आटा
मटमैला, मोटा-झोटा
भूखे पेट को गड्डु-मड्डु भरने।
आज उसी आटे से
बाजरे की कुरकुरी रोटी बनाने के लिए
फूँक रहा है
धू-धू सुलगते
धुआँ छोड़ते
अधकच्चे चूल्हे को।

आँखें लाल
आँसू गिरते टप-टप
बहती नाक-
सूँ.....सूँ.....सूँ
खुल्ल-खुल्ल करता नचकऊ बार-बार।
और कभी-कभी
जल जाते हैं हाथ
बाजरे की रोटी सेंकने में।

रूखी-सूखी मटमैली
बाजरे की रोटी को
अब खायेगा नचकऊ
बड़े ही स्वाद से
अधफटे पेड़ की छाँव के नीचे बैठकर,
और फिर पियेगा एक लोटा पानी
गटक-गटक
एक ही साँस में
ताकत पाने के लिए,
जिससे फिर तैयार हो सके
तपती दुपहरी में
रोटी कमाने को।

पूछो! बेचारे नचकऊ से
कैसे जुटाई है
यह मटमैली-सी रोटी
डालो! नचकऊ के चेहरे पर
एक नजर बस
तुम्हें नचकऊ के चेहरे की मायूसी से
मिल जायेगा उत्तर
बाजरे की रोटी की महत्ता का।

और यदि दिल है तुम्हारे पास
तो मटमैली बाजरे की रोटी से
आयेगी सोंधी गन्ध
नाक बेधती हुई,
और यह गन्ध
रुचिकर लगेगी
ब्रेड-बटर और आमलेट से।

जिन्दगी का क्षय रोग

देखो!
टटोलो!
जिन्दगी से हारे
मजबूर घूरे की मजबूरियाँ
मिल जायेंगी आस-पास ही
इस झोपड़ी के इधर-उधर
हवा में तैरती हुई,
और
मिट्टी के ढेलों में ही
पा जाओगे
खाँसते-थूकते
उस बदसूरत
आदमीनुमा कंकाल की
चिता की राख
हड्डियों के खंजड़ के साथ
जो बुझ गई है
जिन्दगी के क्षय रोग के साथ ही।

इस झोपड़ी के ही
एक कोने में
देखा था मैंने घूरे को
जीवन की अन्तिम साँसें गिनते
और भरी जवानी में
मन्नी को विधवा होते।

टेढ़े-मेढ़े खरहरे
झटोले-से खटोले में
पड़ा रहता था घूरे
और दिन-भर
करवटें बदलने के साथ
निकल पड़ती थी आह
उसके पपड़ी भरे
मुरझाये मुँह के बीच से
फिर कभी-कभी
खाँसते-खाँसते
अचानक
खंखार गले में अटक जाने पर
ऐंठ जाता था
मूँज की रस्सी की तरह।

क्षण-क्षण में
खंखार के गोले
थूकता रहता था घूरे
कभी भीत पर
कभी खटोले के आस-पास
और कभी खंखार
जब चिपट जाती थी
मुँह से निकल कर
कपड़ों पर
तब मक्खियाँ
भिनभिनाती रहती थीं
घूरे के पूरे शरीर पर।

घूरे की धँसी आँखें
पिचके कपोल
लकड़ी-से हाथ-पैर

बेदम होकर
पड़े रहते थे जहाँ-तहाँ
ताकत न थी उसके शरीर में
मक्खियों से भिड़ने की
मजबूरी झलकती थी
उसके कंकालनुमा शरीर से।

पास ही मटकी में
खटोले के नीचे
बिल्कुल पास ही
रखा रहता था पानी
और बाजरे की रोटी के
दो-चार सूखे टुकड़े
पड़े रहते थे सिलवर की थाली में।

अकेला
बिल्कुल अकेला
पड़ा रहता था झोपड़ी में घूरे
पूरे दिन
दवा-दारू की तो बात दूर
बस ओझा का ताबीज
लटका रहता था
घूरे की गर्दन में
सारे कष्टों से
मुक्ति दिलाने के लिए।

झोपड़ी में पड़े
फटे-पुराने चिथड़ों में ही निकाल दी घूरे ने
पूस की रात
भादों की घनघोर बारिस
और जेठ की तपती दुपहरी

घर का हाल बेहाल था
घूरे के छोटे-छोटे चार बच्चे
अनाथ-से
अधभूखे
फटे-पुराने कपड़ों में
घूमते रहते थे दिन-भर
मारे-मारे इधर-उधर।

घूरे की पत्नी मन्नी
तड़के ही निकल जाती थी
झाड़ू-बुहारू कर
खाना बनाकर
पति को खिलाकर
बच्चों को दुलार कर
मेहनत-मजदूरी करने
और ढो रही थी
अपने कन्धों पर
जंग लगे घर का बोझ।

मन्नी जोड़ती थी रोज-रोज
एक-एक दाना
पसीना बहाकर
तब जल पाता था
दिन-भर का ठण्डा चूल्हा
छः प्राणियों का पेट भरने के लिए।

मन्नी ने अपने पति से ही
सीखा था
परिस्थितियों से जूझना
अभाव में सन्तोष का सहारा लेना
और अब अनायास ही

घुट रहा था दम
उसकी रही-सही आशाओं का।

दिन-भर
थकी हारी
शाम को आते ही
चिन्ता में डूबी
उलझन में उलझी
पैर दबाती थी घूरे के
हाल-चाल पूछकर
धीरज रख लेती थी
अपने मन में
अडिग विश्वास था उसे
अपने सुहाग पर,
लेकिन
चिन्ता में घुट-घुट कर
सूखती जा रही थी धीरे-धीरे
पेड़ से अधटूटी डाल की तरह।

अभावों में ही बीता था
घूरे का बचपन
दो रुपये की मजदूरी में
निकल जाता था
पूरा दिन
जमींदार के खेत में
रिदते-पिदते
गाली खाते
डाँट सुनते।

घुनी हुई जिन्दगी ही
मिली थी उसे

विरासत में अपने बाप से
नहीं मिला सुख उसे
रुपये-पैसे का
रोटी-कपड़े का।

लेकिन
तन-मन
हृष्ट-पुष्ट था पूरी तरह
सूखी रोटी को भी
भा गया था उसका शरीर
कैसा लम्बा तगड़ा
हो गया था वह
कम उम्र में ही।

ज्वार-बाजरे की सूखी कड़व को
काट देता था कट-कट
एक ही झटके में
मशीन चलाकर
लेकिन
यकायक परिवार के भार ने
दबा दिया था उसको
गर्दन तक।

खेतिहर मजदूर
आखिर
कब तक
मौज करता
और किसके सहारे
जिसका गाँव में न घर था
न जंगल में खेत

घूरे ने ताकत के बल पर की
दिन-रात मजदूरी
और भरा पेट
अपने परिवार का।

लेकिन
धीरे-धीरे परिवार बढ़ा
आर्थिक भार बढ़ा
घूरे का वजन घटा
और मजबूरी में
आखिरकार
दो सौ रुपये माह में
हो गया सेठ का नौकर।

सेठ जी ने मजबूरी का फायदा उठाया
घूरे पर पूरी तरह छाया
कभी यहाँ
कभी वहाँ
उसको दौड़ाया
ढाई मन की बोरियों को
घूरे की पीठ पर होकर निकाला।

रात-दिन
सेठ ने
उसको रेंदा पशुओं की तरह
भूखे-प्यासे जागते काम करते
बैठ गईं आँखें,
उभरने लगीं हड्डियाँ गालों की
दर्द बताने के लिए।

और आखिर में
एक दिन
तपती दुपहरी में
लू ने झपटकर
दबोच लिया था
उसके काम करते
पसीना बहाते कमजोर शरीर को।

घूरे कई दिन तक
झोपड़ी में बेसुध पड़ा
तपता रहा
आग की तरह,
आँख फाड़ कर कभी-कभी
देखता था इधर-उधर
और अपनेआप
बड़बड़ाने लगता था।

बिना दवा-दारू के
दिन-रात घुलता रहा
घूरे का शरीर।
गरीबी तंगहाली से जूझती रही
निरीह मन्नी
कभी ओझा बुलाती
कभी नोन-मिर्च करती
लोगों की राय जानकर
कभी आमरसी
कभी प्याज का रस पिलाती।

दवा-दारू के लिए
उधार लेने उसने

साहूकार के हाथ जोड़े
मुखिया के पैर छुए
लेकिन एक पैसा न निकला
घूरे के लिए
किसी के हाथ से।

एक बार गिरकर
उठ नहीं पाया घूरे
रोजी-रोटी टूट गई
बँधी आस बिखर गई
घर में चूहे कूदे
पेट में नसें कुड़मुड़ाईं
बच्चों पर मायूसी छाई
अधभूखा परिवार
सतुआ खाकर
पानी पीता रहा
जीवन गुजरता रहा।

लेकिन घूरे का जर्जर शरीर
दिन-प्रतिदिन घुनता रहा
बीमारी में गलता रहा
रात निकल जाती थी
जागते,
खंखार थूकते
और लफ-लफ जाता था
घूरे का कमजोर शरीर।

आस-पास ही
रात में सोते लोग
नींद में व्यवधान पड़ने पर
गालियाँ देते थे ऊँची आवाज में

और घूरे सुन लेता था
उनकी गालियाँ मजबूरी में।

आखिर एक दिन
जिन्दगी से हार कर
घूरे ने इसी खटोले में ही
छोड़ दिये थे अपने प्राण
मुक्ति पाने के लिए।

मन्नी बिलखती रही
छोटे बच्चे अनाथ होकर
तड़पते रहे
अपने दद्दू को याद करते रहे
और
खोजते रहे
झोपड़ी के कोने-कोने में।

घूरे की माटी को भी
कोई उठाना नहीं चाहता था
क्षय रोग के डर से
मन्नी के बार-बार हाथ जोड़ने पर
मुश्किल से कुछ लोग तैयार हुए थे
घूरे की माटी को ठिकाने लगाने।

यही है घूरे के जीवन की कहानी
ऐसे लोगों की करुण कहानी
हाय-हाय! कैसा जीवन
चैन न पाया जिसने एक क्षण
दु:ख में बचपन दु:ख में यौवन
बीत गया यों जीवन का कण-कण।

निकालो
खोजकर
मेहनत के मसीहा की चिता से
चुटकी भर राख
माथे पर लगाने के लिए
मेहनतकश लोगों को
सांत्वना देने के लिए
शायद इसी से मिल जाये
उसकी आत्मा को शान्ति
जो भटक रही होगी
अभी भी
झोपड़ी के इर्द-गिर्द
अपने बच्चों को देखने के लिए
कहीं वे अभी भी
भूखे न सो जावें
और परेशान होकर
खोज रही होगी उपाय
जिन्दगी के इस क्षय रोग से
छुटकारा दिलाने के लिए।

दशहरा

दशहरा
विजय-पर्व है
आज के ही दिन
राम ने मारा था रावण को
और जीत हुई थी
असत्य पर सत्य की।

आज याद आती है
उन अचूक बाणों की
जिनको राम ने
चलाया था
निःस्वार्थ होकर
केवल लोकहित के लिए
और मुक्ति दिलाने
जन-जन को
घोर उत्पीड़न से।

हमें त्योहारों से
सीखनी चाहिये
अच्छी बातें
जीवन में ढालने के लिए
हम दशहरा से भी सीखें
सद् आदर्श
और लें संकल्प

संघर्ष करने का
अत्याचार और अनाचार से
और लोकहित में लगा दें
अपनी पूरी शक्ति
तन और मन की।

दशहरा तब
अपना अर्थ पा लेगा
साथ ही
रामकथा भी सार्थक होगी।

छुईमुई

छुईमुई!
क्यों झुक जाता है
तेरा बदन छूने मात्र से।

छुईमुई!
अब शर्मीली मत बन
झुक मत
झुकने का समय
बीत गया है
करने लगे हैं करिश्मा
छोटे-छोटे जीव भी
इस कम्प्यूटर युग में।

तू भी कुछ कर
डर मत किसी से
झुक मत
अपना स्वाभिमान जगा
लज्जा दूर भगा
चुभो दे काँटा
जो तुझे समझते हैं छोटा
और करते हैं तेरे साथ
अप्राकृतिक छेड़छाड़।

अन्यथा
छुईमुई!
अन्धकार है तेरे सामने
लोग आयेंगे
चले जायेंगे छेड़छाड़ कर
और तू शर्म से झुकती रहेगी
हर बार अपमान सहकर।

प्रतिक्रिया

अब चौराहे पर
औरत की अधनंगी तस्वीर देखकर
दिन-दहाड़े हत्या होने पर
आतंक फैलने पर
बहन-बेटी की बेइज्जती होने पर
और
अव्यवस्था फैलने पर
नहीं होती है कोई प्रतिक्रिया।

आज लोगों की बुद्धि शक्ति
क्षीण हो गई है
या फिर
हार मानकर, उसने
इसी को नियति मान लिया है
या आदी हो गया है आदमी
इस माहौल में जीने का
या नैतिक मूल्य बदल गये हैं
समय के साथ ही
या भय बढ़ गया है
या झंझट से बचने का
सीधा-सादा रास्ता खोज लिया है।

इस मशीनी युग में
आत्मा मर गई है

हृदय सो गया है
इसी से अब
अच्छाई-बुराई
ईमानदारी-बेइमानी का
भेद खत्म हो गया है
लोग बुराई को ही अच्छाई मानने लगे हैं
क्योंकि अब
बुरा काम होने पर
नहीं होती है
कहीं कोई प्रतिक्रिया।

चैतू

चैतू!
दूर एकदम दूर
हाथ जोड़
सिकुड़ा सिमटा
मुरझाया
खड़ा है मन्दिर के बाहर
क्षय रोग के रोगी सा।

दूर से ही
टकटकी लगाकर
झाँक-झाँक कर
देख रहा है चैतू
अपने भगवान की मूरत
जो ढँकी है
छोटे-छोटे
मोटे-मोटे
मानव-पुत्रों से।

अभी बिल्कुल अभी
एक महीना पहले ही चैतू ने
बनाई थी हरि की मूर्ति
और अपने हाथों से
हरि के नाक कान
हाथ पैर

गढ़े थे बड़े ही सलीके से
काट-छाँट कर छेनी से।

देह को तरासा था
दिन-रात छेनी चलाकर
उस समय
उभर आये थे छाले
उसके हाथों में
फिर भी नहीं थमे थे उसके हाथ।

चिलचिलाती धूप
थक जाती थी
उसकी कमरतोड़ मेहनत के सामने
माथे से पसीने की बूँदें
गिर पड़ती थीं
अचक-अचक
तरासी गई मूर्ति के
कभी माथे पर
कभी पेट पर
और कभी चरणों में।

फिर आज वही
मेहनत का पुजारी चैतू
खड़ा है मन्दिर के बाहर
क्यों ? क्यों ? क्यों ?

खतरनाक जानवर

सभी कहते हैं
साँप खतरनाक जानवर है
डँसता है तो
जहर से
आदमी मर जाता है।

लेकिन साँप
जान-बूझकर नही डँसता किसी को
साँप भी जीव है
अपनी रक्षा करना
उसका कर्त्तव्य है
इसलिए कोई अपराध नहीं करता।

बेकार बदनाम कर रखा है
आदमी ने साँप को
साँप तो डँसता है
केवल एक को,
लेकिन आदमी तो एक बार में
गाँव के गाँव
शहर के शहर
लाखों लोगों को डँस लेता है।

आदमी का डँसा तो
एक सेकन्ड में

चिथड़ों में बदल जाता है
बिना किसी कारण के
केवल तुच्छ स्वार्थ के लिए।

साँप खतरनाक जानवर नहीं है
खतरनाक जानवर है
दो टाँगों का आदमी
जिसने अपने स्वार्थ के लिए
पहाड़ों को ढहा दिया
वनों को काट दिया
और निगल गया बिना डकार लिए
अनगिनत पशु-पक्षियों की आवाज।

आज आदमी
संजोकर प्रकृति-विजय के सपने
खोद रहा है कब्र
दफन करने को
जीव संसृति
मानव संस्कृति।

दीपावली तुम आना

दीपावली तुम
घर-घर में नव ज्योति
नई खुशहाली
नये सन्देश
लाती हो हर साल
लेकिन
दबे पाँव चली जाती हो
पता नहीं कहाँ ?
और तुमको खोजते रहते हैं
गली-गली
सड़क-सड़क
खेत-खलिहान
मिल-कारखाने में
तेल का दिया जलाने वाले।

लोग कहते हैं
तुम्हारे साथ
लक्ष्मी घूमती है घर-घर
खुशियाँ बाँटने के लिए
आधी रात को।

दीपावली तुम आना
नया रूप धर
चाहे जैसे भी हो

पसीने की गन्ध से रूठी
लक्ष्मी को ले आना
एक बार
टूटी-फूटी झोपड़ियों के पास
जहाँ तेल न खरीद पाने के कारण
जल न पाई हो
दिये की बाती
अन्धेरे में ही मनाई गई हो
दीवाली, और
चना-गुड़ से किया गया हो
लक्ष्मी-पूजन।

तुम्हारे आते ही
आत्मीयता पाकर
नई रोशनी से जगमगा उठेंगी
अंधेरे जीवन की बस्तियाँ।

गाँव शान्त हैं

ऊँचे टीले पर
पहाड़ की चोटी पर
सागर के किनारे
समतल मैदान में
सारी हलचलों से दूर
समेटकर अनगिनत गाथाएँ
एकदम शान्त हैं गाँव।

दुपहरी में तपते
बरसात में भीगते
ठण्ड में ठिठुरते
पतझड़ में उजड़ते
बसन्त में महकते
सब कुछ झेलते
स्थिर हैं गाँव।

एक दूसरे से बँधे
मिट्टी से जुड़े
सरलता लिए
सन्तोष का रस पिये
मानवता से गुँथे
तपस्यारत तपस्वी से
बहुत भले लगते हैं गाँव।

अभाव में जीते
गरीबी में पलते
धीरे-धीरे पहचान खोते
कभी जागते
कभी झुँझलाते
कभी कसमसाते
फिर भी शान्त लगते हैं गाँव।

मेहनत करना
कभी न थकना
प्यार से रहना
कभी न डरना
सत् पर चलना
सद्भाव रखना
सब कुछ जानते हैं गाँव।

प्रकृति के साथ घुले
खेती में फूले-फले
आपस में मिले-जुले
भारतीय प्रकृति से रचे
भारतीय संस्कृति में ढले
धीरे-धीरे बढ़ते
सदियों से शान्त हैं गाँव।

नियति

गाँव की गली
सँकरी सँकरी
कूड़े-कचरे से भरी
दे रही दुर्गन्ध
कर रही बलात्
मुँह-नाक बन्द
आस-पास के लोगों का।

भरी दुर्गन्ध में
दुबला-पतला
नवयुवक झनकू
साने है हाथ-पैर
लड़ रहा है
दुर्गन्ध से लड़ाई
और भर रहा है कचड़ा
पास रखी लोहे की परात में।

कुछ देर बाद
रखेगा परात को सिर पर
और फिर ऊँचा-नीचा पैर पड़ने पर
टपकती जायेगी परात से
बदबू देती हुई कीचड़
उसके शरीर पर।

लेकिन झनकू
साहस रख कर
सीना तानकर
ले जायेगा गन्दगी समेटकर
आबादी से दूर बहुत दूर
उसको दफनाने।

कूड़ा-कचरा ढोकर
झाड़ू लगाकर
पाता है रोज एक रोटी रूखी-सूखी
हर घर से झनकू,
जिसको लेता है घर-घर घूमकर और
भरता है अपने परिवार का पेट।

यही क्रम
यही सिलसिला
वर्षों से चला आ रहा है
झनकू ऐसे ही
अपने परिवार की
जीविका चला रहा है
पीढ़ियाँ निकल गयीं
गाँव में रहते
कचरा ढोते
झाड़ू लगाते
फिर भी कहीं
कोई परिवर्तन नहीं
बाबा भी झाड़ू लगाते थे
बापू भी झाड़ू बुहारते हैं

वह भी झाड़ू लगाता है
और अब
उसका छोटा बच्चा भी
झाड़ू लगाना सीख रहा है
उसके साथ-साथ घूमकर।

●
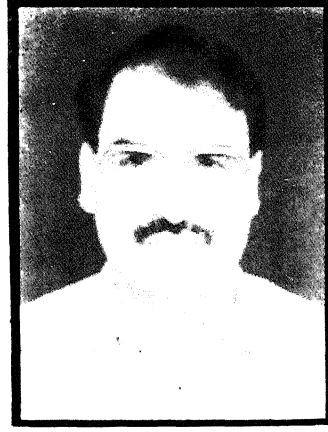
किशन सिंह अटोरिया

जन्म 10 जनवरी 1957 को गाँव सोनगाँव, जिला भरतपुर (राजस्थान) के एक किसान परिवार में। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के पास ही हायर सेकेण्डरी स्कूल सिनसिनी (भरतपुर) में। श्री जया महाविद्यालय भरतपुर से बी० ए० एवं राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से अर्थशास्त्र में एम० ए०।

1980 में राजस्थान लेखा सेवा एवं 1984 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयन के पश्चात् उत्तर प्रदेश सरकार के अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर दायित्वों का निर्वहन।

विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य में विशेष रुचि। कई कविताएँ एवं कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

'गाँव शान्त हैं' पहली प्रकाशित कृति।

एक और काव्य संग्रह 'धरती मुस्करायेगी' प्रकाशनाधीन।

सम्प्रति : परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

सम्पर्क : B-5, बटलर पैलेस, लखनऊ।